महात्मा गाँधी, जवाहरलाल नेहरू एवं एम.एन राय के विचारों का तुलनात्मक अध्ययन

– डॉ. बीना महलावत
सहायक प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान
खंडेलवाल वैश्य महिला महाविद्यालय,
वैशाली नगर, जयपुर

प्रस्तावना

देश का इतिहास बदल देने वाले गांधीजी, पंडित जवाहरलाल नेहरू, एम.एन. राय के साथ कुछ मौकों पर वैचारिक मतभेद हुए, लेकिन कुछ प्रसंग ऐसे हैं जो बताते हैं कि तीनों का बापू के प्रति सर्वोच्च सम्मान का भाव रहा। पंडित नेहरू को गांधीजी समय–समय पर आगाह करते रहे, लेकिन उनके स्वास्थ्य के प्रति चिंतित भी रहे। अपने आखिरी पत्र में गांधीजी ने उन्हें यह कहकर आशीर्वाद दिया कि हिंद के जवाहर बने रहो। नेताजी बोस जब कांग्रेस अध्यक्ष बने, तब भी उन्होंने अंतिम फैसलों के लिए गांधीजी को ही अधिकृत किया। यहां तक कि अविभाजित भारत के आखिरी वाइसरॉय लॉर्ड माउण्टबेटन भी गांधीजी के व्यक्तित्व से इतने प्रभावित थे कि वे मानते थे कि इतिहास महात्मा को वही जगह देगा, जो जगह प्रभु ईसा या भगवान बुद्ध को मिली। इसी प्रकार भारत के आधुनिक राजनीतिक चिन्तकों में एम. एन. राय का महत्वपूर्ण स्थान है। उन्होंने हमारे समक्ष 'मौलिक मानववाद' का आदर्श प्रस्तुत किया है, जिसे राजनीतिक चिन्तन में नवीन योगदान समझा जा सकता है। उन्होंने व्यक्ति की स्वतंत्रता तथा समानता पर विशेष बल देकर व्यक्ति के व्यक्तित्व की गरीमा को बढ़ाया है।

गाँधी, नेहरू एवं राय : तुलनात्मक अध्ययन

गाँधी ऐसे युग में पैदा हुए थे, जबकि देश पराधीन था। शासक वर्ग देश का शोषण करता था तथा देश की राजनीतिक व्यवस्था चिन्तनीय थी। अविश्वास, ईर्ष्या, द्वेष, कलह, साम्प्रदायिकता, कपट, स्वार्थ का बोलबाला था। राजनीति और आध्यात्म का कोई सम्बन्ध नहीं था। सम्पूर्ण मानवता का भविष्य अंधकारमय था। ऐसी स्थिति में गाँधी जी ने राजनीति का आध्यात्मीकरण किया, राजनीति और धर्म को संयोजित किया और कहा कि "मेरे लिए धर्म का अर्थ सत्य और अहिंसा है।"[1] उन्होंने अहिंसा और सत्य को ही धर्म माना और उसे राजनीति में स्थान दिया। धर्म से रहित राजनीति का उनके लिए कोई मूल्य नहीं था। इसीलिए उन्होंने कहा कि "मेरे लिए धर्मरहित राजनीति बिल्कुल गंदी चीज है, जिससे हमेशा दूर रहना चाहिए।"[2] उनका

विचार था राजनीति शुद्ध और पवित्र होनी चाहिए, क्योंकि राजनीति मानवता के साथ जुड़ी हुई है। इसलिए उसका आध्यात्मीकरण आवश्यक है। यदि ऐसा न हो सका तो "धूर्तता और प्रवंचना पर आधारित राजनीति वास्तविकता में अधिकाधिक धूर्तता एवं प्रवंचना फैलायेगी। घृणा से घृणा और हिंसा से हिंसा का फैलना स्वाभाविक है। इसीलिए राजनीति के आध्यात्मीकरण के अतिरिक्त हमारे पास कोई दूसरा उपाय नहीं है।"[3] यदि राजनीति को राजनीति रहने देना है, मानव कल्याण का साधन बनाना है, तो उसका आध्यात्मीकरण करना आवश्यक है।

इसी प्रकार नेहरू ने लोकतांत्रिक सरकार की संस्थाओं एवं सिद्धान्तों को परिभाषित करते हुए स्पष्ट किया कि प्रतिनिधित्व के माध्यम से लोकप्रिय प्रभुसत्ता, सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार के सिद्धान्त पर नियतकालिक निर्वाचन, बहुमत का शासन तथा जिम्मेदार राजनीतिक दल व नेतृत्व ही सच्चे लोकतंत्र को स्थापित कर सकते है। नेहरू का विचार था कि भारत का संविधान भारत के लोगों द्वारा ही निर्मित होना चाहिए। यद्यपि तात्कालिक परिस्थितियों में संविधान सभा के लिए यह पूर्णतः संभव न हो पाया (संविधान सभा अप्रत्यक्षतः अधिकांश रूप में निर्वाचित व अशंतः मनोनीत थी) संविधान को आगे की ओर बढ़ता हुआ, लचीला एवं परिवर्तनीय बनाने में विश्वास व्यक्त किया है। जिससे कि बदलती हुई परिस्थितियों के साथ तालमेल बैठाना संभव हो सके।[4] स्थिर संविधान मृत्यु के समान होता है। नेहरू ने राजनीतिक लोकतंत्र के साथ ही आर्थिक एवं सामाजिक क्षेत्र में भी लोकतंत्र को स्थापित करने को अपना लक्ष्य स्वीकार किया। नेहरू इस क्रम में संसदीय लोकतंत्र के प्रति वफादार बने। नये भारत के लिए नेहरू ने समाजवादी व लोकतंत्रवादी दोनों ही मूल्यों को निर्धारण किया है।[5] प्रत्येक व्यक्ति को उन्नति एवं प्रगति के लिए आर्थिक व सामाजिक व राजनीतिक तीनों ही क्षेत्रों में अधिकतम संभाव्य समान अवसर मिलना अनिवार्य है। जैसा कि फरवरी, 1962 में 'बंग्लोर' के भाषण में कह रहे थे कि– ''वोट का अधिकार अच्छा एवं उपयोगी है, परन्तु एक भूखे एवं नंगे व्यक्ति के लिए इसके कोई मायने नहीं होते है अतः लोकतंत्र आर्थिक एवं सामाजिक क्षेत्र में भी स्थापित हो।''[6]

नेहरू कई बार गांधीजी की इच्छा के खिलाफ जाकर भी काम करते थे, लेकिन इसके लिए गांधीजी ने उन्हें कभी कुछ बुरा–भला नहीं कहा। दिसंबर 1927 में मद्रास में कांग्रेस का राष्ट्रीय अधिवेशन हुआ था। इस अधिवेशन में नेहरू के कहने पर कुछ प्रस्ताव पास किए गए थे, जिनमें से कुछ गांधीजी को पसंद नहीं थे। इसके बाद 4 जनवरी 1928 को गांधीजी ने नेहरू को समझाते हुए लिखा, तुम

बहुत ही तेज जा रहे हो। तुम्हें सोचने और परिस्थिति के अनुकूल बनने को समय लेना चाहिए था। तुमने जो प्रस्ताव तैयार किए और पास कराए, उनमें से अधिकांश के लिए एक साल की देर की जा सकती थी। गणतंत्री सेना में तुम्हारा कूद पड़ना जल्दबाजी का कदम था। परंतु मुझे तुम्हारे इन कामों की इतनी परवाह नहीं, जितनी तुम्हारी शरारतियों और हुल्लड़बाजों को प्रोत्साहन देने की है। पता नहीं, तुम अब विशुद्ध अहिंसा में विश्वास रखते हो या नहीं। परंतु तुमने अपने विचार बदल दिए हों तो भी तुम यह नहीं सोच सकते कि अनाधिकृत और अनियंत्रित हिंसा से देश का उद्धार होने वाला है।

जबकि एम.एन. राय का भारत में क्रांति की संभावनाओं को लेकर स्पष्ट मत था। अपनी किताब 'प्रोस्पेक्टस ऑफ रेवोल्यूशन इन इंडिया' में उन्होंने लिखा कि क्रांति के होने की संभावना नहीं है। उनके मुताबिक अंग्रेज सरकार इस बात से खबरदार थी कि जनता में गुस्सा फैल रहा है और इसके पहले वह क्रांति बनकर उभरे, सरकार ने बुर्जुआ समाज को रियायतें देकर अपनी ओर कर लिया है। दूसरी तरफ, एम.एन. राय का यह भी मानना था कि पूंजीवादी अर्थव्यवस्था उद्योगों के साथ–साथ कृषि को भी लील रही है जिससे खेतिहर समाज को उपनिवेशवाद और भारतीय पूंजीवादी ताकतों का सामना करना पड़ रहा है। भारत में औद्योगिक क्रांति क्यों नहीं पनपी, इसे एम.एन. राय ने बखूबी समझाया। उनके मुताबिक यूरोप में मशीनी युग की शुरुआत ने इंग्लैंड जैसे देशों को कच्चे माल की आपूर्ति के लिए यहां–वहां भटकने पर मजबूर कर दिया था। इसके चलते भारत जैसे देश उनके उपनिवेश बनकर रह गए। राय का मानना था कि इसी के चलते देश में शहरी सर्वहारा समाज के विकास में देर लगी, वरना कोई वजह नहीं थी कि इस क्रांति से देश अछूता रह जाता। एम.एन. राय का यह भी मानना था हिंदुस्तान का भविष्य बड़े–बड़े उद्योगों के भविष्य पर निर्भर है। वे कहते थे कि औद्योगिक उन्नति से कामगार वर्ग के सदस्यों की संख्या बहुत बढ़ जाएगी। इसलिए भारत को स्वतंत्र कराने का दायित्व मजदूर और किसान वर्ग मिलकर संभालेंगे जो वर्ग संघर्ष के प्रति सजग हो जाने के कारण संगठित हो जाएंगे।[7]

गाँधी जी की कल्पना ऐसे राज्य के निर्माण की थी, जिसमें जनता पर कम से कम शासन हो, आवश्यक होने पर ही उनके कार्यों में हस्तक्षेप किया जाय। ऐसे लोकतंत्र की आशा में उन्होंने कार्य प्रारम्भ किया था, उनका विचार था कि "वही शासन सर्वश्रेष्ठ है, जो कम से कम शासन करता है। इसका अर्थ यह है कि जब–जब राजनीतिक शक्ति पर जनता का अधिकार होता है, तब–तब जनता की स्वतंत्रता में हस्तक्षेप न्यूनतम होता है, जो राज्य अधिक हस्तक्षेप के बिना अपना

काम काज सरलता एवं सफलता के साथ चला सकता है, वही वस्तुतः लोकतांत्रिक है, जहाँ ऐसी स्थिति नहीं है, वहाँ शासन का स्वरूप केवल नाममात्र को लोकतांत्रिक है।"[8]

गाँधी जी ने गाँवों से लोकतंत्र का आरम्भ किया। गाँव के चुने हुए व्यक्ति पंचायत में, प्रत्येक पंचायत का प्रतिनिधि जिले में, और जिले का चुना हुआ प्रतिनिधि राज्य सरकार में और राज्य से केन्द्र में भेजे जायेंगे। इस प्रकार गाँव से लेकर केन्द्र तक का शासन जनता के हाथ में रहेगा। व्यवस्था जनतंत्रात्मक रहेगी, जनता का शासन होगा। इसी प्रकार के लोकतंत्र की गाँधी जी ने सिफारिश किया था और कहा था, "विशुद्ध नैतिक प्राधिकार पर आधारित जनता की प्रभुसत्ता।"[9] उनका विश्वास था कि बिना अहिंसा के सच्चा समाजवाद असम्भव है। इसीलिए उन्होंने 'अविमिश्रित अहिंसा का शासन' को लोकतंत्र की सही परिभाषा माना। शुद्ध रूप से उनकी सत्ता का अर्थ नैतिकता और अहिंसा पर आधारित जनतांत्रिक शासन–प्रणाली थी, इसीलिए उन्होंने सन् 1920 में कहा कि "इस समय के लिए तो मेरे स्वराज्य का अभिप्राय है – आधुनिक अर्थों में भारत का संसदीय शासन।"

जबकि नेहरू ने लोकतंत्र को मानव के सर्वांगीण विकास के अच्छे साधन के रूप में अपनाया। उनकी यह धारणा थी कि मानव का दुःख किसी वाद या समाज व्यवस्था का इस राष्ट्र या उस राष्ट्र से लड़ने से दूर नहीं होगा। वह तब ही दूर होगा जब संसार में शान्ति स्थापित होगी, एक–दूसरे के प्रति घृणा समाप्त हो जायेगी, छोटे–बड़े का अपमान न होगा, रंग, जाति, धर्म का कोई भेद न होगा और सर्वोपरि मानवीय आवश्यकताएँ पूर्ण होगी। उसमें हीन भावना न होगी, नेहरू ने गुटनिरपेक्षता, शान्ति, मित्रता, सहअस्तित्व, पंचशील जैसी नीतिया अपनायी। यह सर्वविदित है कि उनके प्रभाव से कोरिया, इण्डो–चीन, कांगो इत्यादि विश्व युद्ध की चिंगारी लगाने वाले विवाद आंशिक रूप से हल हो गये व लड़ाई रूक गयी। भारत की धरती पर समय–समय पर महान् लोग अवतरित होते रहे है। देश व दल ने नेहरू को तानाशाह बनने की पूर्ण सुविधा या अवसर प्रदान किये तथापि वे तानाशाह नहीं बने। उन्होंने लोकतंत्र का पूर्ण सम्मान किया और ऐसा कोई कदम नहीं उठाया जिसे लोकतंत्र का विरोधी कहा जा सके। उन्होंने लोकतंत्र के अनुशासन को स्वीकार किया व शान्ति, न्याय और स्वतंत्रता के सजग प्रहरी बने रहे।[10] ऐसी कार्य प्रणाली के माध्यम से नेहरू ने भारत में लोकतंत्र की सफलता के पूर्व आधारों को पहले ही स्थापित कर दिया। यही प्रमुख कारण है कि भारत में लोकतंत्र की सफलता ने अनेक पश्चिमी विचारकों की भविष्यवाणियों को गलत साबित कर दिया।

इसी प्रकार एम.एन. राय ने अपने भौतिकवादी दर्शन के अनुरूप ही नैतिकता और धर्म के विषय में विचार किया है। वे व्यक्ति तथा समाज के लिए नैतिक नियमों के महत्त्व के पूर्णत्व को स्वीकार करते हैं, किन्तु उनका मत है कि नैतिकता का स्रोत ईश्वर अथवा कोई अन्य इंद्रियातीत सत्ता नहीं है। इसी प्रकार मानसिक भय और कोई अन्य बाहरी दबाव भी वास्तविक नैतिकता का आधार नहीं हो सकता। सच्ची नैतिकता अंतःप्रेरित ही होती है और बौद्धिक प्राणी होने के कारण मनुष्य किसी तथाकथित देवी शक्ति का आधार लिए बिना स्वयं अपने जीवन में ऐसी नैतिकता का विकास कर सकता है। राय मार्क्सवादियों के इस मत को स्वीकार नहीं करते कि सामाजिक तथा राजनीतिक क्रान्ति के लिए सत्य, ईमानदारी, निष्ठा आदि सद्‌गुणों का परित्याग किया जा सकता है। इस सम्बन्ध में वे स्पष्ट कहते हैं कि– मैं इस विचार के साथ समझौता नहीं कर सकता कि क्रान्तिकारी सद्‌गुणों की सूची में सत्य, ईमानदारी तथा निष्ठा जैसे गुणों का कोई स्थान नहीं है। राय के मतानुसार मनुष्य की स्वतंत्रता सर्वोच्च मूल्य है और यह स्वतंत्रता ही समस्त मूल्यों का स्रोत है। स्वतंत्रता के पश्चात् ज्ञान तथा सत्य का स्थान है और ये दोनों भी मनुष्य के नैतिक जीवन के लिए आवश्यक हैं। असत्य, छल, कपट आदि अनैतिक उपायों के द्वारा स्वतंत्रता प्राप्त नहीं की जा सकती।[11]

राय मनुष्य की व्यक्तिगत स्वतंत्रता के साथ–साथ अतर्राष्ट्रीयतावाद के भी प्रबल समर्थक हैं। उनका विचार है कि वर्तमान युग में मानव समाज के समक्ष सबसे बड़ी समस्या विभिन्न राष्ट्रों के नागरिकों में संकुचित राष्ट्रीयता की तीव्र भावना है, जो उन्हें सम्पूर्ण मानव जाति के कल्याण के लिए सोचने तथा प्रयास करने से रोकती है। प्रत्येक देश के नेता दूसरे देशों के हित की चिंता किये बिना केवल अपने देश की प्रगति के लिए ही प्रयत्न करते हैं। फलतरू मानव समाज भिन्न–भिन्न टुकड़ों में विभक्त हो गया है, जो प्रायरू एक दूसरे के विरुद्ध कार्य करते हैं। आज विश्व में जो संघर्ष, निर्धनता, बेरोजगारी तथा पारस्परिक अविश्वास है, उसका मुख्य कारण यह संकुचित राष्ट्रीयता की भावना ही है। राय का मत है कि जब तक मानव जाति इस संकुचित राष्ट्रवाद से मुक्त नहीं होती तब तक इन समस्याओं का समाधान सम्भव नहीं है। विश्व में एकता और शांति तभी स्थापित हो सकती है। जब हम केवल अपने देश के हित की दृष्टि से नहीं बल्कि सम्पूर्ण मानव जाति के कल्याण की दृष्टि से सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक समस्याओं पर विचार करें। राय यह मानते हैं कि वर्तमान वैज्ञानिक युग में संकुचित, राष्ट्रवाद के लिए कोई स्थान नहीं है, क्योंकि इसके अनुसार आचरण करना अंततः मानव जाति

के लिए घातक सिद्ध हो सकता है। यही कारण है कि मानव समाज में अंतर्राष्ट्रीयता की भावना के विकास को विशेष महत्त्व देते हैं।[12]

गाँधी का स्वराज्य से अभिप्राय था लोक सम्मति के आधार पर भारत वर्ष का शासन। वे स्पष्ट करते हैं, ''लोक सम्मति का निश्चय देश के बालिग लोगों की बड़ी से बड़ी संख्या के मत के द्वारा होगा, फिर वे स्त्रियां हों या पुरुष, इसी देश के हों या इस देश में आकर बस गए हों. वे ऐसे लोग होने चाहिए, जिन्होंने अपने शारीरिक श्रम के द्वारा राज्य की कुछ सेवा की हो और मतदाता सूचियों में अपना नाम लिखवा लिया हो।'' वे आगे कहते हैं, ''फिलहाल मेरे स्वराज्य का अर्थ होगा, भारत की आधुनिक व्याख्या वाली संसदीय शासन व्यवस्था।'' उनका यह भी मानना था कि संसदीय शासन व्यवस्था के अभाव में हम कहीं के भी नहीं रहेंगे। परंतु आज की शासन व्यवस्था लगातार लोगों को लोकतंत्र के दायरे से बाहर कर रही है। गाँधी के भारत में बाहरी लोगों का भी स्वीकार्य है। वहीं वर्तमान शासन व्यवस्था लगातार व्यक्तियों को बहिष्कृत करने पर जोर दे रही है और इसे एक प्रमुख चुनावी मुद्दे के रूप में प्रस्तुत भी कर रही है। संसद व राज्य विधानसभाओं के सत्रों के दिवस लगातार घट रहे हैं और आम जनता को अपने अधिकारों के लिए अधिकाधिक न्यायालयों की ओर रुख करना पड़ रहा है। ऐसे में चुनी हुई संसद की भूमिका पर प्रश्न लग रहा है।

गाँधी जी का भविष्य की भारतीय संसद को लेकर मानना था कि, ''तब हमारी संसद क्या करेगी? जब हमारी संसद हो जाएगी तब हमें महान भूले करने और उन्हें सुधारने का अधिकार होगा। प्रारंभिक अवस्था में बड़ी–बड़ी भूलें हमसे होंगी ही।'' वे यह भी जोड़ते हैं, ''स्वराज्य की एक परिभाषा है, भूल करने की स्वतंत्रता और की गई भूलों को सुधारने का कर्तव्य। और ऐसा स्वराज्य पार्लियामेंट (संसद) में ही निहित है। उसी पार्लियामेण्ट की आज हमें जरूरत है। आज हम उसके योग्य हैं।'' वहीं हम आज देख रहे हैं कि संसद अपने पूर्व के कार्यों में संशोधन को तैयार नहीं है। टाडा व पोटा के भयानक दुरुपयोग और उसे रद्द कर देने के बावजूद धारा 377 को हटाने, सबरीमाला मंदिर पर चुप्पी और आधार कानून को धन कानून के रूप में पारित करना समझा रहा है कि अभी हममें उतनी परिपक्वता नहीं आई है जितनी की एक संसदीय लोकतंत्र में होना चाहिए। हम अपनी ''महान'' भूलों को स्वीकारने और उन्हें ठीक कर पाने के लिए मानसिक रूप से स्वयं को तैयार नहीं कर पा रहे हैं।

गांधी के राजनीतिक उत्तराधिकारी नेहरू के द्वारा उनके विचारों का अपने ढ़ंग से अपनाने का भरपूर प्रयास किया। गांधी व नेहरू के बीच अनेक मूलभूत अवधारणात्मक भेद विद्यमान थे तथापि गांधी का नेहरू पर पूर्ण विश्वास रहा। उन्हीं

के शब्दों में– ''पण्डित जवाहरलाल मूलतः एक भारतीय है तथापि वह एक अन्तर्राष्ट्रवादी भी है, उसके इसी नजरिये ने उसे प्रत्येक रहस्य को अन्तर्राष्टीय स्वरूप से समझने की तालीम दी है और वह एक मानववादी है इसलिए प्रत्येक गलत के प्रति प्रतिक्रिया करने में.... जब मैं कार्य नहीं कर रहा होऊगाँ तो निश्चय ही उसे पता चल जायेगा कि किस प्रकार कार्य करना है।[13]

जबकि राव के मुताबिक नव–मानववाद प्रकृति के दर्शन, तत्व और आत्मा के दर्शन का संगम है। यह मनोविज्ञान और दर्शन का भी मेल है जिसका आधार तर्क और विज्ञान है। इसमें मुख्य जोर 'मनुष्य की स्वतंत्रता' पर है। इसलिए नव–मानववाद स्वतंत्रता के प्रयोग की अनंत संभावनाओं में आस्था रखते हुए उसे किसी ऐसी विचारधारा के साथ नहीं बांधना चाहता जो किसी पूर्वनिर्धारित लक्ष्य की सिद्धि को ही उसके जीवन का ध्येय मानती हो। एम.एन. राय मानते थे कि मार्क्सवाद, गांधीवाद और लोकतंत्र में से कोई भी प्रणाली व्यक्ति को अपनी अनंत स्वतंत्रता की तलाश नहीं करने देती क्योंकि ऐसी प्रत्येक विचारधारा अपनी–अपनी प्रयोजनवादी दृष्टि से बंधी है। राय का मत था कि ऐसी प्रत्येक विचारधारा पहले से उपलब्ध ज्ञान पर आधारित है और वह मनुष्य को किसी–न–किसी पूर्व–निर्धारित लक्ष्य के साथ बांध देती है, इसलिए वह ज्ञान के अनंत विस्तार और स्वतंत्रता की अनत संभावनाओं को मान्यता नहीं देती। एम.एन. राय ज्ञान के अनंत विस्तार और मानव–विकास की अनंत संभावनाओं के प्रति आशावान थे। उनका मानना था कि इस विकास की कोई सीमा नहीं है, इसलिए हमारे वर्तमान ज्ञान के आधार पर इसका कोई पूर्व–निर्धारित लक्ष्य स्वीकार नहीं किया जा सकता। एम.एन. राय का मानना था कि स्वतंत्रता की पहली शर्त वर्तमान बंधनों को तोड़ना है। उनके मुताबिक पिंजरा तोड़ देने पर पंछी खुले आकाश में किधर उड़ेगा – यह तय करने का प्रयत्न निरर्थक है।[14]

राय का चिन्तन एक ऐसी व्यवस्था की खोज के प्रति समर्पित आग्रह का परिणाम है, जिसमेंव्यक्ति की गरिमा को अक्षुण्ण रखते हुए, उसकी भौतिक, नैतिक और आर्थिक उन्नति कोसुनिश्चित किया जाए। राय ने अपने लम्बे अनुभवों के बाद यह निष्कर्ष निकाला है कि वर्तमान राजनीतिक व आर्थिक व्यवस्था मानव के समग्र कल्याण का मार्ग निश्चित नहीं करती। उसनेअपने राजनीतिक चिन्तन में मानव की स्वतन्त्रता को बनाए रखने व उसमें वृद्धि करने के उद्देश्य से कुछ महत्वपूर्ण तथ्यों की खोज करने का प्रयास किया है। उसने व्यक्ति की गरिमा कोनई पहचान देने के लिए अपना नव–मानवतावाद का महत्वपूर्ण सिद्धान्त पेश किया है। इसीकारण वह

पूर्ववर्ती तथा समकालीन विचारकों के श्रेष्ठ बन गया है। उनका विश्व–बन्धुत्व काविचार मानव अधिकारों की रक्षा का एक महत्वपूर्ण प्रयास है। उसने संसदीय लोकतन्त्र के दोषों को पहचानकर लोकतन्त्र को एक नया आयाम देने का प्रयास किया है। दल विहीन प्रजातन्त्र के विचार द्वारा उन्होंने राजनीति दलों की नकारात्मक भूमिका के प्रति गहरा क्षोभ व्यक्त किया है। उसने रूढ़िवादी मार्क्सवाद के जाल से मानव स्वतन्त्रता को बाहर निकालनेका प्रयास किया है।

निष्कर्षतः इतना होने के बावजूद भी अनेक विद्वानों ने उनके विचारों की आलोचना की है। डॉ. विश्वनाथप्रसाद वर्मा ने उनके चिन्तन का मूल्यांकन करते हुए कहा है कि महात्मा गाँधी, जवाहरलाल नेहरू एवं एम.एन राय के विचार भी इन विख्यात दर्शनशास्त्रियों से मिलते थे। वे भी व्यक्ति के आत्म–शासन और राज्य सत्ता के न्यूनतम शासन के पक्ष में थे। महात्मा गाँधी ने भारत के स्वाधीनता संघर्ष में जिस गरिमामय भूमिका का निर्वाह किया, वह सर्वविदित है। उनके नेतृत्व में चला अहिंसक आंदोलन पूरी दुनिया के लिये मिसाल बन चुका है। लेकिन, उनका चिन्तन–मनन भारत की स्वतंत्रता के लक्ष्य की प्राप्ति के तौर तरीकों तक सीमित नहीं था। आजादी मिलने के बाद भारत में सरकार की रीति–नीति तथा लोगों का आचार–विचार, व्यवहार कैसा हो, इसके संबंध में उन्होंने अपने विचार बहुत स्पष्ट रखे थे। स्वाधीन भारत में शासन के स्वरूप, राजनीतिक कार्यकर्ताओं के आचरण और नागरिक दृष्टिकोण के संबंध में महात्मा गाँधी के विचार विश्व के अनेक दार्शनिकों तथा नीति–निर्देशकों से मिलते है।

संदर्भ

1 वर्मा, ताराचन्द, स्मारक ग्रन्थ युगपुरुष, चिन्मय प्रकाशन, जयपुर, 1979, पृ. 73

2 गाँधी, महात्मा, सत्य ही ईश्वर है, पृ. 137

3 सिंह, रामजी, गाँधी दर्शन मीमांसा, बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पटना, 2015, पृ. 166

4. नन्दा, बी.आर., जवाहरलाल नेहरू, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, ऑक्सफोर्ड, न्यूयार्क एण्ड दिल्ली, प्रथम संस्करण 1995, पृ. 53

5. स्वीयट, पर्लिवल, नेहरू, मॉडर्न एशियन स्टडीज, वॉल्यूम–1, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, 1967, पृ. 19

6. मोरर्का, आर.आर., द फादर ऑफ पार्लियामेण्टरी डेमोक्रेसी इन इण्डिया, काश्यप, सुभाष (सम्पादित), नेहरू एण्ड पार्लियामेण्ट, लोकसभा सचिवालय, नई दिल्ली, 1986, पृ. 51–53

7 राय, एम.एन., दी फ्यूचर ऑफ इण्डियन पॉलिटिक्स, पृ. 54

8. प्रसाद, महादेव, महात्मा गाँधी का समाजदर्शन, हरियाणा हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, चण्डीगढ़, 2009, पृ. 187–188

9 हरिजन, 2 जनवरी, 1937

10 शर्मा, आनन्द शंकर, दिव्य पुरूष नेहरू, भगवती शर्मा, नई दिल्ली, 1964, पृ. 116

11 राय, एम.एन., न्यू ह्यूमेनिज्म एण्ड पॉलिटिक्स, पृ. 76

12 राय, एम.एन., पॉलिटिक्स, पावर एण्ड पार्टीज, पृ. 97

13. डी.राम सुन्दर एण्ड रेड्डी ए.ई., जवाहरलाल नेहरू एण्ड मॉडर्न इण्डिया; द इण्डियन जर्नल ऑफ पॉलिटिकल साइंस, वाल्यूम–50, नं. 4, आई.पी.एस.ए., 1989, पृ. 445

14 एमएन रॉय : जिन्हें भारत का पहला वैश्विक नेता कहा जाना चाहिए, सत्याग्रह, 26 जनवरी, 2019